रश्मि पालीवाल
paliwal_rashmi@yahoo.com

शिक्षकों में बदलाव की चुनौतियाँ और संभावनाएं

सार

एकलव्य ने पिछले 30 सालों में शिक्षकों के साथ पाठ्यक्रम विकास और प्रशिक्षण आदि का कई तरीकों से काम किया है। लेख शिक्षक-विकास पर शोध–साहित्य की मदद से इन अनुभवों की समीक्षा करता है। इसमें एक अहम् सवाल की पड़ताल की गई है कि शिक्षकों से बदलाव की अपेक्षाएंकिस आधार पर की जाती हैं? क्या वे अपेक्षाएं अनुचित हैं? क्या शिक्षक को एक व्यक्ति के रूप में हम समझ व स्वीकार कर पाते हैं? इन सवालों पर गौर करते हुए यह समझने की जरूरत है कि शासन की या किसी भी कार्यक्रम की तात्कालिक जवाबदारियां निभाने में शिक्षकों को अपने विकास के सीमित मौके मिल पाते हैं। इसके लिए लंबी दूरी के प्रयासों की जरूरत है जिनमें शिक्षकों को अपने शिक्षण-अनुभवों पर स्वयम् विमर्श करने के लिएनियमित अवसर मिलें। सोचना यह है कि ऐसे अवसरों को बनाने में क्या शासन तंत्र के प्रावधान काफी होंगे या उनके लिए अशासकीय संसाधनों का भी सहयोग लिया जाना चाहिए।

एकलव्य और सेवाकालीन शिक्षक-सहयोग

पिछले 30 सालों में एकलव्यसंस्था सेवाकालीन शिक्षकों के साथ कई तरीकों से काम करती आयी है। शासन के सहयोग से जब पाठ्यक्रमों में नवाचार किए गए, तब उन नवाचारों को विकसित करने के लिए शिक्षकों की भागीदारी बनाने में और उनकी क्षमता के विकास में कई सालों तक सघन काम किया गया। शासन ने अपने स्तर से जो राज्य व्यापी कार्यक्रम लागू किए, उनमें शिक्षक प्रशिक्षणों की रूपरेखा बनाने और शिक्षक संदर्भ समूह को तैयार करने में समय समय पर सहयोग किया जाता रहा। इसके अलावा, स्थानीय स्तर पर शिक्षकों की स्वेच्छा के आधार पर भागीदारी लेते हुए कार्यशालाएं, प्रशिक्षण व कोर्स संचालित किए गए हैं। कभी इनके लिए शासकीय अनुमति भी मिली है। शिक्षकों के लिए कुछ स्रोत केंद्र भी स्थापित हुए हैं। इस संदर्भ में हाल में छिंदवाड़ा जिले के तामिया विकास खण्ड में हुए अनुभवों पर गौर करना उपयोगी होगा।

तामिया के शिक्षकों के साथ प्रयास (2015-18)

एकलव्य ने छिंदवाड़ा जिले के एक विकास खण्ड तामिया में6 से 14 वर्ष के बच्चों की शिक्षा के लोकव्यापीकरण में सहयोग करने के लिए कई कदम उठाए। हमने 34 गांवों में *शिक्षा प्रोत्साहन केंद्र* संचालित किए हैं और 15 माध्यमिक शालाओं में पुस्तकालय भी। कई स्कूलों के शैक्षिक माहौल का दस्तावेजीकरण व अध्ययन भी किया गया। इस अध्ययन मेंशिक्षक अपने काम को कैसे देखते हैं, इसके कई नजारे हमारे सामने आए- कहीं शिक्षक सरकार की योजनाओं का पालन करने में ही अपनी भूमिका देखते हैं और योजना के खतम होते ही उसके तरीकों व सामानों को ताक पर रख कर अगली चालू योजना के क्रियान्वयन में लग जाते हैं। कहीं कोई शिक्षक अपनी निजी समझ को बनाते हुए हर योजना के सार्थक लगने वाले आयामों को अपनी कार्यप्रणाली का हिस्सा बना कर काम करते हैं, चाहे वो योजना बंद ही क्यों न हो गई हो। शिक्षकों के बीच निष्ठा, समझ, शैली, विचार, स्वभाव, रुझान के सैकड़ों अन्तर हैं।

नोडल केंद्र के प्रयोग-एकलव्य की योजना में सोचा गया था कि शिक्षकों के लिए नोडल केंद्र संचालित हों।शिक्षकों के लिए पुस्तकालय और संदर्भ केंद्र संचालित करना शासकीय और गैर-शासकीय प्रयासों का

एक लोकप्रिय कार्यक्रम रहा है। बी आर सी, सी आर सी कार्यालयों में अलमारियों में पुस्तकें भी पाई जाने लगी हैं। फिर भी, उनका सक्रिय उपयोग नहीं हो पाता क्योंकि अधिकांश शिक्षक स्कूल के अलावा समय निकाल कर वहाँ नियमित रूप से आने व किताबें लेने में असुविधा महसूस करते हैं। इस अनुभव को ध्यान में रखते हुए तामिया परियोजना में हमने एक अलग प्रयोग करके देखने का फैसला किया।

परियोजना में 13 कार्यकर्ता शामिल थे जिनकी जिम्मेदारी थी सप्ताह में एक दिन एक स्कूल में शिक्षक के सहयोग के लिए जाना। वे जिस स्कूल में जाते, अपने साथ शिक्षा साहित्य की कुछ प्रतियाँ ले जाते- जैसे, *दिवास्प्न, बच्चे असफल कैसे होते हैं, बच्चों से बातचीत, अध्यापक, मेरी ग्रामीण शाला की डायरी, समरहिल, लोकतांत्रिक विद्यालय, दीवार का इस्तेमाल* आदि। ऐसी करीब 30 किताबों की 15- 15 प्रतियां एकलव्य कार्यालय में संदर्भ के तौर पर रखी गईं थीं। कार्यकर्ता स्कूल विजिट के दौरान वहाँ के शिक्षकों को किताबों का परिचय देते और जो शिक्षक चाहते उन्हें इशू भी कर देते। कई शिक्षकों ने किताबें लीं, कईयों ने कहा कि हमें समय ही नहीं मिलेगा, कुछ ने 4-4 किताबें एक साथ लीं यह कहते हुए कि उनको इस तरह की चीजें पढ़ने कोमिलती ही नहीं हैं।

महीने भर बाद हमने यह सोचा कि यदि शिक्षकों ने किताबें पढ़ ली हों तो उन पर कोई चर्चा आयोजित करें या स्कूल में ही बैठ कर उन पर बातचीत कर लें।यह प्रस्ताव रखने पर अधिकाँश शिक्षकों ने कहा कि वे किताबें घर ले तो गए थे, पर पढ़ नहीं पाए हैं, इसलिए लौटा भी नहीं रहे, पढ़ के देंगे। हमें लगा कि एक सिलसिला बनाने के लिए हम ही उनके साथ स्कूल में बैठ कर कुछ अंश पढ़ कर देखें। तो लंच के समय जब बच्चे खेल रहे होते, हम वहाँ मौजूद एक दो शिक्षकों के साथ बैठ कर किसी किताब के 1-2 पेज पढ़ने की कोशिश करते।कभी कभी इस तरह के पठन में ठीक से माहौल नहीं बन पाता क्योंकि लोग बहुत कम होते और समय व ध्यान भी व्यवस्थित नहीं होता।

शिक्षकों के साथ अन्य संस्थाओं की एकस्पोज़र यात्राएं– दूसरा प्रयास जो हम कर सके वो था शिक्षकों को एकस्पोज़र विजिट के लिए ले जाने का। हम एक साल सेवाग्राम स्थित आनंदनिकेतन स्कूल की विजिट पर गए। आनंद निकेतन स्कूल गाँधी जी की नई तालीम की सोच को साकार करने में संलग्न है। इस विज़िट में तामिया की प्राथमिक शालाओं के करीब 30 शिक्षकों ने भाग लिया। 15 मिडिल स्कूल के शिक्षक बच्चों के साथ छिंदवाड़ा स्थिति "स्किल सेंटर" की विजिट पर गए। अगले साल, शिक्षकों व परियोजना के कार्यकर्ताओं के साथ भोपाल स्थित 'आंचलिक विज्ञान केंद्र','आदिवासी संग्रहालय' व 'मानव संग्रहालय' की विजिट की गई। इन एकस्पोज़र यात्राओं के लिए एक बार हम शासन से अनुमति की व्यवस्था कर सके। एक बार, अवकाश के दिन विजिट आयोजित की जिसमें शिक्षकों ने बढ़ चढ़ कर भागीदारी की। वे एकलव्य के भोपाल व होशंगाबाद कार्यालय और 'पिटारा' एजुकेशन स्टोर को भी देख सके।

एकस्पोज़र विजिट्स का यह अनुभव काफी उत्साहवर्धक रहा। इस के दौरान कोई किसी को कुछ सिखा-समझा नहीं रहा था, किसी बदलाव की योजना नहीं बना रहा था। बस, मर्जी का देख रहे थे, मर्जी का बोल रहे थे.. सभी। किसी चीज से रोमांचित हो रहे थे, किसी से प्रभावित हो रहे थे और जो रस खोजा उसे अपने अंदर जज़्ब कर रहे थे- सभी। साथ में यात्रा करना, खाना खाना- इसके भी अपने मजे थे। एकस्पोज़र विजिटें शिक्षकों के विकास में बिना किसी अपेक्षा के किया गया निवेश था... व्यक्ति के तौर पर उनसे बनाया गया संबंध था।

कार्यकर्ताओं की बैठकों में स्कूल के शिक्षक– एक तीसरा प्रयोग था एकलव्य की परियोजना के कार्यकर्ताओं की बैठकें हर सप्ताह स्कूलों में करने का। परियोजना के 60 कार्यकर्ताओं की एकलव्य टीम के साथ माह में एक बार नियमित बैठकें हुआ करती थीं।ऐसी 3 बैठकों में 20-20 कार्यकर्ता शामिल रहते थे। इस व्यवस्था को और सघन व सुदृढ़ करने के लिए हमने तय किया कि 7-8 गांवों के 10-12 कार्यकर्ताओं की अलग अलग बैठ कें हर सप्ताह करेंगे और इसको बदल बदल कर किसी प्राथमिक शाला में आयोजित करेंगे। ये कार्यकर्ता पिछले

ढाई साल से इन्हीं शालाओं के बच्चों को स्कूल समय से पहले दो घंटे का शैक्षिक सहयोग दे रहे थे और बच्चों की शाला में नियमित उपस्थिति की मॉनीटरिंग भी कर रहे थे।

हमने यह योजना बनाई कि साप्ताहिक बैठक में शिक्षा साहित्य का पठन व चर्चा एक घंटे के लिए नियमित रूप से करेंगे। कार्यकर्ताओं की सप्ताह भर के काम की डायरी का पठन भी एक घंटा करेंगे। इन सत्रों के लिए संबंधित स्कूल के शिक्षक को भी बुलाएंगे, बल्कि शिक्षक के पास उपलब्ध समय के अनुसार इन कामों का समय रखा जाएगा। उस समय जब शिक्षक बैठक में शिरकत करे, कोई कार्यकर्ता बच्चों के साथ काम संभाल सकता है अगर इसकी जरूरत हो तो।

अलग अलग स्कूलों में होने वाली एकलव्य की बैठकों का सिलसिला जुलाई 2018 से चल रहा है। 50 से ऊपर बैठकें हुई हैं और अधिकतर बैठकों में शिक्षक भी जुड़ पाए हैं, हालांकि सभी में नहीं। इसके कई अच्छे परिणाम देखने को मिल रहे हैं।शिक्षकों के साथ उनके समय व सुविधा के अनुसार, संवाद करने की संभावना बढ़ी है।उन्हें ऐसी बैठक के लिए स्कूल छोड़ कर नहीं जाना पड़ता। शिक्षकों ने गिजु भाई की किताब *दिवास्वप्न* का पठन साथ में किया है। 8 – 10 लोगों के समूह में मिल कर पढ़ने व सोचने से शैक्षिक विमर्श का उपयुक्त माहौल मिल जाता है जो पहले नहीं मिल पा रहा था। शिक्षकों को अपने ऊपर कोई दबाव महसूस किए बगैर किसी औरके शैक्षिक प्रयास को देखने व उसकी समीक्षा करने का मौका मिलता है। उन्हें एक अलग कार्य- संस्कृति को अपने ही गांव व स्कूल में पनपता हुआ देखने का मौका मिलता है यानी एक नया एकस्पोज़र उनके आंगन में ही उन्हें हो जाता है।

दो साप्ताहिक बैठकों की झलकियाँ

***दिवास्वप्न*का पठन**

स्कूल ए-प्राथमिक शाला के प्रधान पाठक इसमें शामिल हुए। हमारे पूछने पर उन्होंने अपनी अलमारी में *दिवास्प्न* खोजी पर उनकी अलमारी में यह किताब नहीं निकली (पिछले सप्ताह, एक अन्य प्राथमिक शाला की अलमारी में यह किताब शिक्षक ने निकाल कर हमें दिखाई थी)। पर उनको एकलव्य के कार्यकर्ता द्वारा दी गई किताब- *अध्यापक-* का ध्यान आया, जो उनके ही पास है। मेरे मन में विचार आया कि किसी महीने उनके साथ बैठ कर*अध्यापक* से कुछ पढ़ा जाना चाहिए। मैंने *दिवास्वप्न*(जो हम साथ ले कर आए थे) के कई पेज पढ़े। फिर प्रधान पाठक सर से पढ़ने को कहा तो वे मान गए। उन्होंने पहले खंड को आखिर तक पढ़ा। बीच बीच में वे रुक कर अपने मन में आ रही बातें, यादें, किस्से शेयर करते गए। उनको पढ़ने में रस आने लगा था और वो अन्त तक पढ़ते ही गए।

स्कूल बी-जब मैडम (प्रधान अध्यापिका) साढ़े तीन बजे बैठक में शामिल हुईं हमने *दिवास्वप्न* का दूसरा खण्ड पढ़ना शुरू किया। मैडम ने ही खंड 2 को पढ़ा। बच्चों को सज़ा देने की उपयोगिता पर विचार हुआ। कुछ कार्यकर्ताओं को लगा कि सज़ा तो देनी जरूरी है।तब बच्चों के आत्म अनुशासन पर बात हुई जो गिजु भाई बताना चाहते थे।

हमने याद किया कि बच्चों को अनुशासन की ओर लाने के लिए गिजु भाई ने क्या क्या किया था। लोगों ने पिछले सप्ताह पढ़े गए अंश को ध्यान करते हुए कहानी कहने और खेल खेलने की बात सामने रखी। मैडम भी बच्चों के स्वयं के अनुशासन को महत्वपूर्ण मान रही थीं। इसके बाद श्रुतलेखन के बारे में गिजुभाई के तरीकों और विचारों की समीक्षा की जिसमें एकलव्य के एक कार्यकर्ता ने कहा कि वो भी गिजु भाई की तरह बच्चों के लिखे हुए पर सही गलत कहने का काम नहीं करती।

बच्चों को बेहतर रूप से जानना– इन बैठकों में अपने ही छात्रों के कामों और क्षमताओं से भी शिक्षकों का परिचय होता है। एकलव्य की परियोजना के कार्यकर्ताओं की दैनिक डायरी सुनते हुए वे बच्चों के ऐसे काम को जान पाते हैं जिसका उन्होंने पहले अनुभव नहीं किया था। उदाहरण के लिए एक प्राथमिक शाला की दो शिक्षिकाएं यह सुन कर हतप्रभ थीं कि उनके स्कूल की कक्षा 2 के बच्चों ने एनसीईआरटी की गणित की किताब के कुछ पन्नों पर 20 तक की संख्याओं के साथ कई गतिविधियां ठीक से कर लीं। कक्षा 2 व 3 के बच्चों का सरल शब्द पढ़ना, उनके अक्षरों से नए शब्द व छोटे वाक्य बना कर पढ़ना भी शिक्षकों को अचरज में डाल गया। उनकी प्रतिक्रिया थी कि कार्यकर्ता बच्चों के साथ बहुत मेहनत करते हैं, फिर कुछ बच्चे ध्यान नहीं देते तो सीखते भी कम हैं।

स्कूल महौल के अध्ययन के दौरान भी हमें इस बात

का अंदाजा मिला था कि बहुत से शिक्षक अपने छात्रों की कई क्षमताओं से अनभिज्ञ रह सकते हैं क्योंकि वे उनके साथ बहुत सीमित तरीकों से अंतर्क्रिया करते हैं। जैसे, एक स्कूल की शिक्षिकाओं से जब हम एक बच्ची के बारे में चर्चा कर रहे थे तो हमने पूछा कि क्या वो अपने मन से कोई बात कुछ वाक्यों में लिख लेती है। इस सवाल ने उनको सोचने पर मजबूर कियाऔर उन्होंने कहा कि यह उन्होंने कभी करवा के देखा ही नहीं कि बच्ची अपने मन से कुछ लिख लेती है या नहीं। वे उत्साहित थीं कि अगले दिन स्कूल जा कर वे बच्ची से इस तरह का लेखन करवा के देखेंगी।

कभी शिक्षक साप्ताहिक बैठक के मौके पर अपनी जरूरतें भी हमारे सामने रखते हैं और हमारे काम की कमजोरी को बताते हैं। एक स्कूल की प्रधान अध्यापिका ने कहा कि हमारे सहयोग के बावजूद बच्चे हासिल व उधार वाले सवाल सही नहीं कर पा रहे, तो हमें स्थानीय मान पद्धति सिखाने पर ज्यादा ध्यान देना चाहिए। हालांकि इस विषय पर लंबी चर्चा की दरकार होती है, जो उस दिन संभव नहीं थी, पर शिक्षिका की तरफ से अपनी परेशानी बाँटना एक सकारात्मक बात थी।

इन साप्ताहिक बैठकों में हम बच्चों की कम उपस्थिति या सीखने में आ रही चुनौतियों की समीक्षा भी करते हैं। शिक्षक इस के दौरान अपने अनुभव सामने रखते हैं और उन बातों को भी जहां वे लाचार हो गए थे। ऐसा अक्सर उन बच्चों के संदर्भ में होता है जिनकी कोई विशेष आवश्यकताएं होती हैं। या जिनकी आर्थिक स्थिति बहुत ही संकटपूर्ण होती है। तब शिक्षा के मापदण्ड, परीक्षा व सतत आकलन के ढाँचे, अधिकारियों की मॉनीटरिंग के तरीके आदि पर सवाल सामने आ जाते हैं, जिनका असर शिक्षक के विचारों, तनावों और काम के तरीकों पर होता है।

शिक्षक के काम पर विमर्श की संभावनाएं-आगे के लिए एक लक्ष्य हमारे मन में ये है कि शिक्षक भी इन साप्ताहिक बैठकों में अपनी डायरी पढ़ें- चाहे शुरू में वो लिखी हुई न भी हों.. तो भी- अपने किसी दिन के काम का ब्यौरा प्रस्तुत करें और उस पर समूह में विमर्श करें।

हमें शिक्षकों के साथ इस तरह के संवाद को लम्बे समय तक नियमित बनाए रखना बहुत महत्वपूर्ण लगता है। इसके लिए शासन से प्रावधान किया जाना जरूरी तो होगा पर उसमें निहित समस्याओं को संभालने का भी कोई उपाय निकालना होगा। शासन के पास शिक्षा की गुणवत्ता सुधारने के लक्ष्य हासिल करने की बड़ी जवाबदारी रहती है। समय समय पर इसके लिए अलग अलग योजनाएं व कार्यक्रम चलाए जाते हैं और शिक्षकों की उनके लिए ट्रेनिंग की जाती है। ट्रेनिंग के बाद, हर महीने होने वाली स्थानीय बैठकों में अधिकारी शिक्षकों के साथ इनकी मॉनिटरिंग करते हैं। तात्कालिक उद्देश्यों की जरूरतें इन बैठकों व प्रशिक्षणों में हावी होती हैं, जैसा कि होना पड़ता है, और शिक्षक के ज्ञान की बुनियादी तैयारी के लिए इन आयोजनों में उपयुक्त समय व माहौल नहीं मिल पाता। हम देखते हैं कि कुछ शिक्षक इनसे लंबी दूरी के लाभ ले पाते हैं जबकि बहुत से शिक्षक एक कार्मिक के रूप में अपने को देखते हुए, तदर्थ लाभ ही लेते हैं।

शासन के स्तर पर इतना भी ठीक से होना एक बड़ी चुनौती है। इस स्थिति में शिक्षक को सहयोग करने के पूरक व दूरगामी प्रयास कैसे किए जा सकते हैं, यह सोचा जाना चाहिए और उनकी व्यवस्था बनाई जानी चाहिए। पर,इसे पहले स्वीकार किया जाना होगा कि शिक्षकों की क्षमता बढ़ाने के लिए यह एक बहुत गंभीर जरूरत है। इसकी गंभीरता का अहसास करने में हमें शिक्षक शिक्षा पर हुए शोध व अध्ययनों से मदद मिलेगी। आगे ऐसे कुछ अध्ययनों के बारे में विचार किया जाएगा।

शिक्षक-विकास के मुद्दे

शिक्षकों की आत्म छवि-सोच, समझ व निष्ठा में भिन्नता सभी तरह के स्कूल शिक्षकों में देखी गई है जैसा कि मीनाक्षी थापन रिशी वैली जैसे वैचारिक आधार वाले स्कूल के शिक्षकों के अध्ययन में भी दिखाती हैं (थापन, 1986)। इस भिन्नता के बहुत से स्रोत हो सकते हैं।शिक्षक की सोच समझ उसकी आत्म छवि से और जीवन के पिछले अनुभवों से गढ़ी जाती है, साथ ही उसकी उम्र, कैरियर का पड़ाव, जेंडर, जाति जैसे कई आयामों से प्रभावित होती है। एक अध्ययन में यह देखाने की कोशिश की गई है कि भारत में शिक्षकों को अपनी आत्म छवि बनाने के लिए किस तरह के अलग अलग स्रोत

मिले (काले, 1970)। भारतीय परंपरा में गुरू की छवि बहुत से शिक्षकों के मन में छाई मिलती है। गुरू छवि के चलते उन्हें इस विचार पर सख्त ऐतराज होता है कि उनके छात्र उनके द्वारा दी गई जानकारी पर सवाल करें या चुनौती दें। पर शिक्षकों के मन में यही एकमात्र छवि नहीं है।

ब्रिटिश काल में सार्वजनिक शिक्षा व्यवस्था में किए गए व्यापक बदलावों के कारण शिक्षक के मन मेंगुरू के बदले एक शासकीय कार्मिक की छवि भी बनी है। आगे चल कर शिक्षक की छवि शासकीय कर्मचारी के साथ साथ एक ऐसे व्यक्ति की बनी जो छात्र को एकतरफा ज्ञान देने की बजाय कई सक्रिय, प्रत्यक्ष व ठोस अभ्यासों-अनुभवों से सीखने में उसकी मदद करता है।यह मूलभूत रूप से एक नई छवि है पर यह शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों के दायरे में सिमटी रही और स्कूलों की असल दुनिया में शिक्षक इससे हट कर ही अपने काम को अन्य छवियों के सहारे अंजाम देते रहे। आजादी के बाद राष्ट्र निर्माता के रूप में भी शिक्षक को प्रस्तुत किया गया।

ये सारे बदलाव एक कार्मिक की मूल छवि व असलियत को छू नहीं पाए। काले के अनुसार, शिक्षक को एक बुद्धिजीवी कभी नहीं माना गया।शासकीय पाठ्यचर्या, पुस्तकें, परीक्षाएं, निरीक्षण आदि के तन्त्र में शिक्षक से एक निष्ठावान कार्मिक की ही अपेक्षा होती रही, एक विचारशील बुद्धीजीवी व पेशेवर व्यक्ति की नहीं। कृष्ण कुमार ने शिक्षक की इस वास्तविकता को 'दब्बू तानाशाह' के पद से निरूपित किया है। इन जटिल छवियों में से कोई शिक्षक किस के साथ कितना तादात्म्य महसूस करता है यह उसके निजी जीवन के विकास व उसे मिले अनुभवों से तय होता है।

शिक्षक माल-वाहक नहीं, एक व्यक्ति है-शिक्षकों की स्थिति को समझ पाने में अन्य देशों में हुए अध्ययन भी मददगार हैं और वे दिखाते हैं कि शिक्षक की सोच समझ व कार्य क्षमता में बदलाव लाने के मुद्दे कितने व्यापक हैं।उदाहरण के लिए, माइकेल फुलन और ऐंडी हारग्रीव्ज़ (1994) का तर्क है कि शिक्षा में सुधारों व नवाचारों से हमारी उम्मीदें बहुत ऊंची और संकीर्ण स्वरूप की हो जाती हैं जो शिक्षक को एक व्यक्ति के रूप में अनदेखा करके एक निष्क्रिय व्यक्ति के रूप में देखती हैं जिसे ठीक करने की जरूरत है। इसी कारण नवाचार असफल भी होते हैं। इस कारण भी कि वे यह नहीं पहचान पाते कि शिक्षक अपने अध्यापन कार्य से महत्वपूर्ण नैतिक व सामाजिक उद्देश्यों को पूरा करना चाहते हैं- शिक्षक को बदलना यानी इन उद्देश्यों को बदलना। यह ऐसी प्रक्रिया है जिसमें समय लगता है और विनम्रता बरतने की जरूरत होती है। इसे पोसा जा सकता है पर बलपूर्वक विकसित नहीं किया जा सकता। शिक्षक जिस प्रकार के शिक्षक हैं- उसके बनने में उनको स्कूल प्रबन्धन व शासन से मिले अनुभवों की भी बड़ी भूमिका होती है, उस काल की और समाज की भी भूमिका होती है जिसमें वे जी रहे हैं। उनकी उम्र की भूमिका होती है, कैरियर के जिस चरण में वे हैं उसकी भी। पर हम जब कोई नई विधि लागू करने चलते हैं हम शिक्षकों के बीच मौजूद भिन्नताओं को अनदेखा कर के उन्हें एक समजातीय समूह मान कर काम करने लगते हैं। इसमें मौजूद जेण्डर भेद को भी हम गहराई से नहीं पहचान पाते। हमें वास्तविकता को पहचान कर त्वरित और कठोर बदलाव के विचार को त्याग कर एक अधिक विनम्र, व्यापक व स्थाई बदलाव के लिए प्रयास करना चाहिए जो शिक्षक को एक व्यक्ति के रूप में संबोधित कर सके।

शिक्षण का ज्ञान कहाँ मिल सकता है-शिक्षक के ज्ञान को पुष्ट करने में किस तरह के प्रयास कारगर होंगे, यह एक गहरी समीक्षा का विषय है। भारत में सेवा पूर्व पाठ्यक्रमों की समस्याओं को कृष्ण कुमार (2002) शोभा सिन्हा आदि के लेखन से समझने का मौका मिलता है। विश्वविद्यालयों में दिया जाने वालाशिक्षा का सैद्धान्तिक ज्ञान कितना उपयुक्त साबित हुआ है, इसपर गौर करते हुए मनबी, रसल व मार्टिन (2001)एक गहरा विमर्श खोलते हैं। वे लिखते हैं कि दरअसल शिक्षण का ज्ञान एक कारीगर के ज्ञान की तरह असके कामकाज में, उसके व्यवहार में गुंथा हुआ मिलता है- और विश्वविद्यालय नहीं समझ पाते कि इस क्राफ्ट नौलेज को वे कैसे सिखाएं और मान्यता दें।विश्वविद्यालयों को यह भी स्पष्ट नहीं हो रहा कि अधिकांश शिक्षक सैद्धान्तिक धारा से आ रहे ज्ञान को अनुपयोगी क्यों पा रहे हैं। शोध यह भी उजागर कर रहा है

कि शिक्षक का ज्ञान ही नहीं उसकी मान्यताएं और उसके मूल्य इतने बलवान होते हैं कि वे शिक्षक शिक्षा के कोर्स करने पर भी नहीं बदलते और शिक्षण के कार्य पर आगे चल कर लगातार असर डालते हैं।

सैद्धान्तिक अध्ययन के अलावाहम प्रशिक्षु शिक्षकों को शाला अनुभव व प्रैक्टिस टीचिंग के लिए स्कूलों में भी भेजते हैं। सवाल है कि क्या यह व्यावहारिक ज्ञान ज्यादा उपयुक्त साबित हुआ है? इस सवाल की समीक्षा करते हुए मनबी व अन्य का कहना है कि स्कूल में अध्यापन का अभ्यास भी शिक्षकों की शिक्षा के काम के लिए उपयुक्त नहीं पाया जा रहा है। स्कूल की व्यवस्थाएं, अन्य पुराने शिक्षकों, पालकों, बच्चों, प्रशासकों के पुराने विश्वास व अपेक्षाएं नए प्रयोगों को करने व उन पर चिन्तन से सीखने की स्पेस नहीं देतीं। वे उल्टा पुरानी धारणाओं में नए शिक्षक को तेजी से ढाल देती हैं। छात्रों की परीक्षाएं, ग्रेडिंग, मानकीकृत टेस्टिंग, शिक्षकों का मूल्यांकन आदि तत्व स्कूल के माहौल में हावी रहते हैं। स्कूल के इस माहौल को तय करने में प्रशिक्षु शिक्षक और उसके प्रशिक्षक (टीचर एजुकेटर) का कोई हाथ नहीं हो सकता।

अपने व्यवहार पर विचार करते हुए सीखना ही रास्ता है-इस संदर्भ में एक सुझाव उभरा है कि शिक्षक को अपने व्यवहार पर बहस व तर्क करने के अवसर दिए जाने चाहिए। वह किसी विवेचक मित्र के सामने अपने कक्षा-व्यवहार की सफाई पेश करे- अपने तर्क रखे- और वह विवेचक मित्र उसकी परिस्थितियों की सराहना करते हुए उसके व्यवहार को समझने के लिए प्रश्न करे। इस तरह की संवादपूर्ण प्रक्रिया के जरिए शिक्षक अपने नैतिक या व्यावहारिक कारणों, या पूर्व अनुभवों से बनी छवियों आदि का खुलासा करेगा और उनकी जांच-परख करेगा। यह है रिफ्लेक्टिव प्रैक्टीशनर की धारणा (शुल्मन, 1994) इस धारणा में यह माना गया है कि शिक्षक को अपने काम से जुड़ा ज्ञान होता है और उस ज्ञान को दूसरों के सामने जस्टीफाई किया जा सकता है- उस पर उठ रहे प्रश्नों के जवाब दिए जा सकते हैं और उन प्रश्नों की रोशनी में उस ज्ञान का विकास किया जा सकता है। इस तरह के अनुभव आधारित संवाद और विमर्श के मार्ग से शिक्षकों को अपनी मान्यताओं, विश्वासों व धारणाओं को परखने व बदलने का मौका मिलेगा जो अन्य पारम्परिक साधनों से नहीं बदल रहे थे। यहां शिक्षक को किसी और की सत्ता के सामने झुकने का दबाव महसूस नहीं होगा- जैसे कि वे अब तक किसी अधिकार सम्पन्न व्यक्ति की सत्ता या किसी हावी होते हुए तर्क की सत्ता के सामने महसूस करते रहे हैं। वे अपने अनुभव की सत्ता के साथ काम कर सकेंगे और इसके बल पर अपने लिए नए विश्वासों का निर्माण कर पाएंगे।

रिफ्लेक्टिव प्रैक्टीशनर की इस परिकल्पना में विचारणीय बात यह है कि शिक्षक के अनुभव की सत्ता की अहमियत के साथ साथ उनके अनुभव के **विस्तार** की बात भी अहमियत रखती है। इस अनुभव –विस्तार पर ध्यान नहीं दिया गया तो अनुभव का पुनर्उत्पादन भी होता रह सकता है। दूसरी बात जिसे अनदेखा नहीं किया जा सकता वो है कि शिक्षक के साथ विवेचना करने वाले सहकर्मियों की उपलब्धता के बारे में सोचना। तामिया परियोजना में एकलव्य ने देखा कि उसके ग्रामीण कार्यकर्ता अपने समानांतर शिक्षण अनुभव के बल पर स्कूल के शिक्षकों के साथ ऐसे सहकर्मियों की भूमिका निभाना शुरू कर पाए थे। यह एक प्रकार की संभावना है... पर, संभावनाएं और भी खोजी जानी चाहिए- जैसे शासकीय-अशासकीय शिक्षकों में से। जिला शिक्षा संस्थानों, शिक्षा महाविद्यालयों की फैकल्टी आदि की भी भूमिका हो सकती है हालांकि स्कूली शिक्षण का ताजा अनुभव न होने से इसमें एक सीमा आ जाएगी। शिक्षकों के प्रति एक रचनावादी दृष्टिकोण इस सामा को लांघने में सहायक हो सकता है।

भारत में हम 2005 की राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा के बाद से बच्चों के प्रति एक रचनावादी नजरिए को अपनाने की बहुत वकालत कर रहे हैं, पर क्या यह बात सिर्फ बच्चों के लिए प्रासंगिक है?दरअसल, शिक्षकों के साथ अपने संवादों, निर्देशों व प्रशिक्षणों को एक रचनावादी आधार देना भी बहुत जरूरी है। शिक्षक भी शिक्षण के बारे में अपने ज्ञान की रचना करता है... इसलिए हमारे सुझाव, निर्देश आदि की भूमिका यह नहीं हो सकती

कि वे शिक्षक को बता दें कि उसे क्या करना है।शिक्षक की एजेंसी के क्या मायने हैं और इनको सामने लाए बगैर हम कैसे एनसीएफ 2005 को अंजाम नहीं दे सकते, यह समीक्षा बत्रा ने सशक्त ढंग से की है (बत्रा, 2005)। जाहिर है इसके लिए सेवाकालीन शिक्षक सहयोग की अर्थपूर्ण व्यवस्थाएं सोचनी पड़ेंगी ताकि वास्तविकता में बदलाव देखा जा सके।

पिछले कई सालों से एकलव्य में शिक्षकों के साथ दूरगामी संवादों को बनाने के रास्ते खोजने के लिए पहलकदमी जारी है।इसके कुछ अनुभव इस लेख में साझा किए गए हैं। शिक्षकों के साथ इस तरह का काम कई और संस्थाएं भी कर रही हैं।इनकी समीक्षा करते हुए शिक्षकों के सेवाकालीन सहयोग का एक खाका विकसित करने और उसके लिए नीतिगत प्रावधान करने की सख्त जरूरत है। इस काम की दो-तीन बड़ी चुनौतियां दिखाई देती हैं। एक चुनौती है शिक्षक की एजेंसी के बारे में एक सैद्धान्तिक समझ विकसित करने की। दूसरी, अपनी क्षमता के दूरगामी विकास के लिए शिक्षक को समय उपलब्ध कराने की। तीसरी, ऐसी स्कूल लीडरशिप विकसित करने की जो शिक्षक के विकास की समझ का सही उपयोग कर सके।दुर्भाग्य से सरकारी व निजी शिक्षा व्यवस्था की खामियां व कमियां इतनी विकराल हैं कि शिक्षक विकास के जो मुद्दे इस लेख में रखे गए हैं, वे बेमानी लगने लगते हैं, चाहे वे हमारे लिए कितने भी महत्वपूर्ण क्यों न हों। उम्मीद है एक बार फिर उन मुद्दों की ओर ध्यान दिलाने में यह लेख सहायक सिद्ध होगा।

संदर्भ

- Batra, P. (2005). Voice and agency of teachers. *Economic and Political Weekly*, October 1, 2005.
- Fullan, M. & Hargreaves, A. (1994). The teacher as a person. In A. Pollard and J. Bourne, (Ed.), *Teaching and learning in the primary school* (pp.67-72), Routledge Falmer.
- Kale, P. (1970). The guru and the professional: the dilemma of the secondary school teacher in Poona, India (pp. 371-376). *Comparative Education Review*.
- Kumar K. (2002). *Planned lessons and other problems of teacher training, in reflections on lesson planning*, IASE, Department of Education, University of Delhi
- Munby, H., Russell, T. & Martin, A. K. (2001). Teachers' knowledge and how it develops. *Handbook of Research on Teaching*, 4, 877–904.
- Shulman, L. (1994). Those who understand knowledge growth in teaching. In A. Pollard and J. Bourne. (Ed.), *Teaching and learning in the primary school* (pp. 84-88), Routledge Falmer.
- Thapan, M. (1986). Forms of discourse: A typology of teachers and commitment. *British Journal of Sociology of Education, Taylor and Francis Ltd*, 7(4), 415-431.